बूटामल

बनाम

भारत संघ

27 मार्च 1962

(न्यायाधिपति पी. बी. गजेन्द्रगढ़कर और के. एन. वांचू)

परिसीमा- अपरिदान के लिए प्रतिकर के लिए वाहक के खिलाफ वाद -प्रारंभिक बिंदु-यदि परिसीमा अंतिम इनकार से प्रारंभ होती है-पक्षकारों के बीच पत्राचार, भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 (1908 का 9) अनुच्छेद 31 की प्रासंगिकता।

5 अगस्त, 1947 को अपीलार्थी ने एन. डब्ल्यू. रेलवे द्वारा गुजरांवाला, जो अब पाकिस्तान में है, से जगाधरी के लिए दो खेपों को बुक किया। खेप परिदत्त नहीं की गई और 22 जनवरी, 1948 को अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अंतर्गत प्रतिकर के रूप में माल के मूल्य का दावा करते हुए रेलवे को नोटिस दिया। नोटिस में उल्लेख किया गया कि वाद हेतुक 21 और 30 अगस्त, 1947 को उत्पन्न हुआ, जब परिदान से इनकार कर दिया गया। 1 दिसंबर, 1948 को रेलवे ने अपीलार्थी को सूचित किया कि खेप अभी भी गुजरांवाला में पड़े हुए थे और अपीलार्थी द्वारा पाकिस्तान के प्राधिकारियों से आवश्यक अनुमति प्राप्त करने पर भेजे जा सकते थे। 13 दिसंबर, 1949 को अपीलार्थी ने माल के अपरिदान के

लिए प्रतिकर के लिए एक वाद दायर किया। प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि वाद समय से बाहर था क्योंकि यह उस समय से एक साल के भीतर दायर नहीं किया गया था "जब माल परिदत्त किया जाना चाहिये थी " जैसा कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 31 में वर्णित किया गया है।

अभिनिर्धारित किया कि वाद समय द्वारा वर्जित था। अनुच्छेद 31 में शब्द "जब माल परिदत्त किया जाना चाहिए" को सख्त व्याकरणिक अर्थ दिया जाना चाहिए और इसमें साम्यिक विचार का स्थान नहीं है। अनुच्छेद 31 के अंतर्गत परिसीमा माल के परिदान के लिए पक्षकारों के बीच निर्धारित समय की समाप्ति पर प्रारंभ हो गई और ऐसे किसी करार के अभाव में परिसीमा युक्तियुक्त समय जिसकी समाप्ति पर परिदान किया जाना था,बीतने के बाद प्रारंभ हो गई। युक्तियुक्त समय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित किया जाना था। उस समय कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि समय उस दिनांक से चलना शुरू हुआ जब रेलवे ने अंततः परिदान से इनकार कर दिया, सही नहीं था; जहां विधायिका का आशय था कि समय इनकार करने की दिनांक से चलना चाहिए, उस संबंध में इसने उचित शब्दों का उपयोग किया है। परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु सामान्य तौर पर पक्षकारों के आचरण या उनके बीच पत्राचार से प्रभावित नहीं हो सकता है, जब तक कि इसमें वाहक द्वारा उत्तरदायित्व की अभिस्वीकृति शामिल न हो या युक्तियुक्त समय को प्रभावित करने वाला कुछ न दर्शाया गया हो। वर्तमान मामले में

परिदान पांच या छह महीने के भीतर किया जाना चाहिए था, जैसा कि अपीलार्थी द्वारा दिए गए धारा 80 के नोटिस द्वारा भी वर्णित किया गया है और वाद उस समय की समाप्ति के एक वर्ष से अधिक समय बाद दायर किया गया था।

पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा 2 मई, 1956, को निर्णित डोमिनियन ऑफ इंडिया बनाम फर्म अमीनचंद भोलानाथ (एफ. बी.) को अनुमोदित किया।

जुगल किशोर बनाम महान भारतीय प्रायद्वीपीय रेलवे (1923) आई. एल. आर. 45 ऑल. 43 ; बंगाल और उत्तर पश्चिमी रेलवे कंपनी बनाम महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह बहादुर, (1933) आई. एल. आर. 12 पैट. 67 , 77 ; जय नारायण बनाम गवर्नर-जनरल भारत, ए. आई. आर. (1951) कैल. 462 ; और गवर्नर-जनरल परिषद बनाम एस. जी. अहमद, ए. आई. आर. (1952) नाग . 77 , अस्वीकृत।

नागेंद्रनाथ बनाम सुरेश, ए. आई. आर. (1932) पी. सी. 165 और जनरल एक्सीडेंट फायर एंड लाइफ इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम जनमोहम्मद अब्दुल रहीम, ए. आई. आर. (1941) पी. सी. 6, संदर्भित किया गया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : की सिविल अपील सं. 507/ 1960 ।

1951 की आर.एफ.ए. संख्या 299 में दिल्ली में पंजाब उच्च न्यायालय (सर्किट बेंच) के 19 मार्च, 1958 के निर्णय और डिक्री की अपील।

अपीलार्थी की ओर से के. एल. गोसैन, आर. गणपति अय्यर और जी. गोपालकृष्णन ।

प्रत्यर्थी की ओर से बी. सेन और पी. डी. मेनन।

27 मार्च 1962 ।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वांचू द्वारा दिया गया ।

पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर एक प्रमाणपत्र पर यह अपील परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 31 की व्याख्या पर प्रश्न उठाती है। अपीलार्थी रेलवे में बुक किए गए कुछ माल के परिदान न करने के संबंध में भारत संघ से 24,000 /- रुपये की राशि की वसूली के लिए फॉर्मा पॉपरिस में एक वाद लाया । अपीलार्थी जी. एम. बूटामल एंड कंपनी के नाम और शैली के तहत और गोपाल मेटल रोलिंग मिल्स एंड कंपनी के नाम और शैली के तहत गुजरांवाला में व्यापार कर रहा था, जो अब पाकिस्तान में है, वह दोनों का एकमात्र मालिक था। 5 अगस्त, 1947 को विभाजन से ठीक पहले अपीलार्थी ने उत्तर पश्चिमी रेलवे गुजरांवाला को जगाधरी तक परिवहन के लिए दो खेप सौंपी और इन खेपों को उसी दिन दो रेलवे रसीदों द्वारा बुक किया गया था। लेकिन खेप जगाधरी तक नहीं

पहुंची। अपीलार्थी ने पूछताछ की और जब कोई परिदान नहीं किया गया तो उसने 30 नवंबर, 1947 को रेलवे पर उस माल के मूल्य का दावा किया जो परिदत्त नहीं किया गया था। बाद में, 22 जनवरी, 1948 को अपीलार्थी ने धारा 80 सिविल प्रक्रिया संहिता,के अंतर्गत रेलवे को नोटिस दिया जिसमें यह कहा गया था कि दो रेलवे रसीदों के तहत बुक किए गए माल को बार-बार याद दिलाने और संबंधित अधिकारियों की मांगों के बावजूद परिदत्त नहीं किया गया। यह भी कहा गया कि बुक किए गए माल का मूल्य 24,189 / 4 / - रु. था और रेलवे इस नुकसान के लिए उत्तरदायी था जो कि रेलवे की लापरवाही के कारण हुआ था । यह भी कहा गया कि वाद हेतुक 21 और 30 अगस्त, 1947 को और बाद की तारीखों पर उत्पन्न हुआ जब अपीलार्थी को इनकार किया गया । अंत में यह कहा गया कि यदि राशि का भुगतान नहीं किया गया तो रेलवे के विरुद्ध वाद दायर किया जाएगा। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि इस नोटिस के बावजूद अपीलार्थी और रेलवे के बीच पत्राचार चलता रहा और 1 दिसंबर, 1948 को रेलवे ने अपीलार्थी को सूचित किया कि दोनों खेप गुजरांवाला में अभी भी पड़ी थी और पाकिस्तान सरकार द्वारा निर्यात पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण उत्तर पश्चिमी रेलवे द्वारा उनके प्रेषण को रोक दिया गया था । इसलिए रेलवे ने अपीलार्थी से अनुरोध किया कि वह मुख्य नियंत्रक, निर्यात और आयात, कराची और पश्चिम पंजाब के निकासी संपत्ति के संरक्षक से एक परमिट प्राप्त करें और इसे स्टेशन मास्टर गुजरांवाला

को भेजें ताकि माल जगाधरी भेजा जा सके। अपीलार्थी को यह भी बताया गया कि यदि वह अपेक्षित परमिट प्रस्तुत करने में विफल रहता है तो पाकिस्तान में लागू कानून के अनुसार खेप का निपटान कर दिया जायेगा, और रेलवे प्रशासन माल के किसी भी नुकसान, क्षति या विनाश के लिए जिम्मेदार नहीं होगा। ऐसा लगता है कि रेलवे और अपीलार्थी के बीच पत्राचार का यह अन्त था और अपीलार्थी 13 दिसंबर,1949 को वर्तमान वाद लाया।

भारत संघ ने इस वाद का विरोध किया और कई प्रतिरक्षा प्रस्तुत की गई हालाँकि जिनके बारे में हम वर्तमान अपील में संबंधित नहीं हैं। विचारण न्यायालय द्वारा सात विवाद्यक तय किए गए थे, जिनमे सबसे महत्वपूर्ण विवाद्यक परिसीमा का था।विचारण न्यायालय ने परिसीमा सहित सभी विवाद्यको पर अपीलार्थी के पक्ष में फैसला सुनाया और उसे 24,189 / 4 / - रुपये के लिए डिक्री दी । हालाँकि इसने पक्षों को अपनी लागत स्वयं वहन करने का आदेश दिया।

इसके बाद प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय में एक अपील की गई, और मुख्य बिंदु जो वहां उठाया गया वह यह था कि 13 दिसंबर 1949 को दायर किया गया वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 31 के तहत माल के अपरिदान या परिदान में विलम्ब के लिए प्रतिकर के लिए वाहक के खिलाफ समय उस समय से चलना प्रारंभ होता

है "जब माल का परिदान किया जाना चाहिए"। उच्च न्यायालय में जो प्रश्न उठाया गया वह अनुच्छेद 31 में इन शब्दों की व्याख्या का था। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 31 में इन शब्दों से जुड़े अर्थ को लेकर उच्च न्यायालय में मतभेद था और एक अन्य मामला, अर्थात् डोमिनियन ऑफ इंडिया बनाम फर्म अमीनचंद भोलानाथ (1949 का सी. ए. 97, निर्णीत 2 मई, 1956) में एक पूर्ण पीठ को एक निर्देश किया गया। उस निर्देश में पूर्ण पीठ ने निर्धारित किया कि "अनुच्छेद 31 के तहत परिसीमा पक्षकारों के बीच निर्धारित समय की समाप्ति पर शुरू होती है और ऐसे किसी करार के अभाव में परिसीमा युक्तियुक्त समय की समाप्ति पर शुरू होती है, जो कि प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार निश्चित किया जाता है।" इसलिए उच्च न्यायालय ने उस मामले में लिये गए दृष्टिकोण का पालन किया और अगस्त 1947 में प्रचलित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभिनिर्धारित किया कि माल बुकिंग के अधिकतम पांच या छह महीने के भीतर परिदत्त किया जाना चाहिए था और इसलिये वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था क्योंकि यह दिसंबर 1949 में लाया गया था, परिसीमा की अवधि केवल एक वर्ष थी। इसलिए उच्च न्यायालय ने अपील को मंजूर किया, विचारण न्यायालय की डिक्री को अपास्त किया और वाद को खारिज कर दिया। हालाँकि इसने पक्षकारों को अपनी लागत वहन करने का आदेश दिया। चूंकि इस मामले में विधि का एक सारभूत प्रश्न शामिल था, इसलिए उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को एक प्रमाण पत्र प्रदान किया; और

इस तरह मामला हमारे सामने आया है।

अनुच्छेद 31 इस प्रकार हैः --

वाद का वर्णन	परिसीमा काल	वह समय जब से काल चलना आरम्भ होता है।
xxx	xxx	xxx
31. वाहक के विरूद्ध माल के अपरिदान के या परिदान के विलम्ब के निमित प्रतिकर के लिए	एक साल	जब माल परिदत्त किया जाना चाहिये था

इसकी व्याख्या भारत में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा कई निर्णयों का विषय रही है और इन निर्णयों में जिस प्रश्न पर विचार किया गया है वह उस समय का है जिससे अवधि चलना प्रारंभ होती है ।

अनुच्छेद के अंतर्गत, समय तब से चलना आरंभ होता है "जब माल परिदत्त किया जाना चाहिए था" और किसी को यह सोचना चाहिए था कि इन शब्दों का अर्थ खोजने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सामान्य तौर पर, एक संविधि के शब्दों को उनका सख्त व्याकरणिक अर्थ दिया जाना चाहिए और साम्यिक विचार का इसमें स्थान नहीं है, विशेष रूप से वाद या विधिक कार्यवाही संस्थित करने के लिए परिसीमा की अवधि को सीमित करने वाले कानून के प्रावधानों में। यह प्रिवी काउंसिल द्वारा दो निर्णयों नगेंद्रनाथ बनाम सुरेश और जनरल एक्सीडेंट फायर एंड लाइफ एस्योरेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम जनमहोमद अब्दुल रहीम (ए.आई.आर.1941 पी.सी.6) में निर्धारित किया गया था। पहले मामले में प्रिवी काउंसिल ने देखा कि "परिसीमा की अवधि का निर्धारण हमेशा कुछ हद तक मनमाना होना चाहिए और इसके परिणामस्वरूप अक्सर कठिनाई हो सकती है। लेकिन इस तरह के प्रावधान के निर्माण में साम्यिक विचार का स्थान नहीं हैं, और शब्दों का केवल सख्त व्याकरणिक अर्थ ही एकमात्र सुरक्षित मार्गदर्शक हैं।" बाद के मामले में यह देखा गया कि "एक परिसीमा अधिनियम को इस तरह की संरचना को प्राप्त करना चाहिए जैसे कि इसकी भाषा अपने सामान्य अर्थ में लाती है..... परिसीमा संविधियों द्वारा कभी-कभी गरीबी, संकट और अधिकारों की अज्ञानता के मामले में बड़ी कठिनाई कारित हो सकती है फिर भी वैधानिक नियमों को इन और इस तरह के अन्य मामलों में उनके सामान्य अर्थ के अनुसार लागू किया जाना

चाहिए।"

ऐसा लगता है कि तर्क की दो पंक्तियों ने अनुच्छेद 31 की तीसरे स्तंभ के शब्दों की व्याख्या पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों को शासित किया है। पहला इस विचार पर आधारित है कि यह रेलवे को साबित करना था कि माल के परिदान के लिए क्या समय लिया जाना चाहिये और इसलिए परिसीमा तभी शुरू हो सकती है जब रेलवे अंततः कहे कि वह माल का परिदान नहीं कर सकता है। तर्क की दूसरी पंक्ति विबंध के सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होती है और इसका यह प्रभाव है कि जहाँ रेलवे पत्राचार करता है और कहता है कि माल का पता लगाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, रेलवे यह अभिवचन करने से रोक दिया जाएगा कि समय प्रश्न पर पत्राचार समाप्त होने से पहले की अवधि से कुछ समय पहले चलना प्रारंभ हो गया था। हालाँकि यह ध्यान दिया जा सकता है कि यद्यपि अधिकांश निर्णय तर्क की इन दो पंक्तियों का पालन करते हैं और मानते हैं कि समय केवल तभी चलना प्रारंभ होता है जब रेलवे अंततः माल का परिदान करने से इनकार कर देता है, लेकिन यहाँ और वहाँ एक असहमति भी दर्ज की गई है। हम इनमें से कुछ मामलों पर बाद में विचार करेंगे।

पहले हम यह देखें कि एक सामान्य व्याकरणिक संरचना में अनुच्छेद 31 के इन शब्दों का क्या अर्थ है। यह ध्यान दिया जाएगा

कि 1877 और 1908 के परिसीमा अधिनियम के बाद अनुच्छेद 31 की स्थिति यह है, यह मामलों के दो वर्गो को नियंत्रित करता है, अर्थात् (i) जहां माल का परिदान नहीं हुआ है और (ii) जहां माल के परिदान में विलम्ब हुआ है।दोनों वर्ग के मामलों में समय उस दिनांक से चलना प्रारंभ होता है जब माल का परिदान किया जाना चाहिए। अतः अनुच्छेद के स्तंभ तीन में इन शब्दों का ऐसा अर्थ होना चाहिए जो स्तंभ एक में वर्णित दोनों स्थितियों पर समान रूप से लागू हो। चाहे परिदान न हुआ हो या परिदान में विलम्ब हुआ हो, दोनो मामलों में परिसीमा उस दिनांक से चलना प्रारंभ होती है जब माल का परिदान किया जाना चाहिए। अब यह विवाद में नहीं है कि यदि परिवहन के अनुबंध में यह तय करते हुए शर्त है कि माल का परिदान कब किया जाना है तो अनुच्छेद 31 की तीसरी पंक्ति के शब्दों के अर्थ में यह वह समय होगा "जब माल का परिदान किया जाना चाहिए। " हालाँकि कठिनाई मामलों के उस वर्ग में उत्पन्न होती है जहाँ परिवहन के अनुबंध में कोई अभिव्यक्त या विवक्षित शर्त नहीं है, जिससे उस दिनांक का जिससे माल का परिदान किया जाना है, अनुमान लगाया जा सकता है। इस तरह के मामलों में अनुच्छेद 31 के स्तंभ 3 के शब्दों की व्याख्या का प्रश्न गंभीर रूप से उत्पन्न होता है। लेकिन इन शब्दों का केवल एक ही अर्थ हो सकता है चाहे वह परिदान में विलम्ब का या अपरिदान का मामला हो। अपने सामान्य व्याकरणिक अर्थ में शब्दों को पढ़ते हुए वे हमारी राय

में केवल एक व्याख्या करने में सक्षम हैं, अर्थात्, यह वर्णित करता

है कि समय युक्तियुक्त अवधि के अंत जिसमे परिदान किया जाना चाहिए था, की समाप्ति के पश्चात चलना प्रारंभ हो जाएगा। शब्द " जब माल परिदत्त किया जाना चाहिए था" का केवल अर्थ है (संविदा में किसी अभिव्यक्त या विवक्षित शर्त के अभाव में जिससे समय का अनुमान लगाया जा सके) प्रेषण स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन में लिया गया युक्तियुक्त समय। ऐसा मामला ले , जहां वाद हेतुक माल के परिदान में विलम्ब पर आधारित है । ऐसे मामले में माल का परिदान कर दिया गया है और दावा परिदान में हुए विलम्ब पर आधारित है। स्पष्ट रूप से विलम्ब का प्रश्न केवल इस आधार पर तय किया जा सकता है कि प्रेषण स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन के लिए युक्तियुक्त समय क्या होगा। इसके ऊपर लिया गया कोई भी समय विलम्ब का मामला होगा। इसलिए, जब हम अपरिदन के मामले के संबंध में तीसरे स्तंभ के इन शब्दों की व्याख्या पर विचार करते हैं, तो उनका अर्थ समान होना चाहिए, अर्थात्, प्रेषण के स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन में लिया गया युक्तियुक्त समय। इसलिए कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि समय उस दिनांक से चलना प्रारंभ होता है जब रेलवे अंततः परिदान से इनकार कर देता है,सही नहीं हो सकता है,अनुच्छेद 31 के तीसरे स्तंभ के शब्दों की व्याख्या वाहक का परिदान से अंततः इनकार नहीं है।इस संबंध में हम अनुच्छेद 31 के तीसरे स्तंभ में उपयोग की गई भाषा की तुलना परिसीमा अधिनियम के कुछ अन्य अनुच्छेदों के साथ

कर सकते हैं जो दिखाएगा कि जहां विधायिका का आशय था कि समय इनकार करने की दिनांक से चलना चाहिए वहां उस संबंध में उचित शब्दों का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 18 , जो अधिग्रहण पूरा नहीं होने पर सरकार के विरुद्ध प्रतिकर के लिए एक वाद का प्रावधान करता है, समय "पूरा करने से इनकार करने की दिनांक " से चलना प्रारंभ होता है। इसी तरह, अनुच्छेद 78 जिसमें आदाता द्वारा एक विनिमय पत्र के आहर्ता के विरुद्ध वाद दायर करने का प्रावधान है, जो कि लेने से इनकार करने के कारण अनादृत हो गया है, समय " स्वीकार करने से इनकार करने की दिनांक" से चलना प्रारंभ होता है। फिर से अनुच्छेद 131 में जो आवधिक आवर्ती अधिकार स्थापित करने के लिए एक वाद का प्रावधान करता है, परिसीमा तब चलना प्रारंभ होती है "जब वादी को पहली बार अधिकार का आनंद लेने से इनकार कर दिया जाता है।"इसलिए, यदि विधायिका का आशय था कि अपरिदान के मामले में, परिसीमा वाहक द्वारा परिदान के अंतिम इनकार से शुरू होगी, तो ऐसे मामले को एक अलग अनुच्छेद द्वारा प्रदान किया गया होता और हम उसके लिए स्तंभ तीन में उपयुक्त शब्द पाते। यह तथ्य की अनुच्छेद 31 अपरिदान ओर परिदान में विलम्ब दोनो मामलों को समाहित करता है दिखाता है कि दोनो मामलों में परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु प्रेषण स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन के लिए युक्तियुक्त समय समाप्त होने के बाद है। यह तथ्य कि युक्तियुक्त समय क्या है यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर

करता है और अन्य तथ्य कि वाहक को दिखाना होगा कि माल के परिवहन के लिए युक्तियुक्त समय क्या होगा हमारी राय में यह अनुच्छेद 31 के तीसरे स्तंभ में उपयोग किए गए शब्दों की व्याख्या में कोई अंतर नही करता। न ही हमे लगता है कि वाहक और जिस व्यक्ति का माल ले जाया जाता है उसके बीच किए गए किसी पत्राचार के कारण परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु के मामले में विबंध का कोई प्रश्न हो सकता है। लेकिन, निसंदेह, पत्राचार से कुछ ऐसा पता चलता है जो वाहक के उत्तरदायित्व की अभिस्वीकृत के बराबर हो सकता है तो वह परिसीमा को एक नया प्रारंभिक बिंदु देगा। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, तीसरे स्तंभ के शब्द प्रेषण स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन के लिए लगने वाले युक्तियुक्त समय को संदर्भित करते है और यह युक्तियुक्त समय सामान्य तौर पर पक्षकारों के पश्चातवर्ती आचरण से प्रभावित नही हो सकता है।इसलिए हमारी राय है कि अमीनचंद भोलानाथ (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया जवाब कि "ऐसे मामलों में परिसीमा पक्षकारों के बीच निर्धारित समय की समाप्ति पर प्रारंभ होती है और ऐसे किसी करार के अभाव में परिसीमा युक्तियुक्त समय की समाप्ति से प्रारंभ होती है, जो प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार तय किया जाना है, " सही है।

अब हम इस संबंध में उच्च न्यायालयों द्वारा निर्णित कुछ प्रतिनिधि मामलों पर विचार करेंगे। जुगल किशोर बनाम द ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे (1923 आई. एल. आर. 45 ऑल.) में यह देखा गया कि

जब एक्स. आई. रेलवे कंपनी ने अपने स्वयं के आचरण से वादी को जाँच के परिणाम का इंतजार करवाया, उसकी ओर से प्रतिरक्षा में परिसीमा का तर्क देना चौंका देने वाला है। आगे यह कहा गया कि "पक्षकारों के बीच पत्राचार से पता चलता है कि मामले की जांच की जा रही थी और वाद के एक साल के भीतर परिदान के लिए कोई इनकार नहीं किया गया था; मामले की परिस्थितियों में हम यह मानने में असमर्थ हैं कि वाद उस युक्तियुक्त समय की समाप्ति से एक साल से अधिक समय बाद संस्थित किया गया था,जिसके भीतर माल परिदत्त किया जाना चाहिए था। "

इस निर्णय से यह प्रतीत होता है कि तीसरे स्तंभ के प्रासंगिक शब्दों का अर्थ यह है कि परिसीमा उस युक्तियुक्त समय की समाप्ति पर प्रारंभ होती है जिसके भीतर माल परिदत्त किया जाना चाहिए था। लेकिन इसमें रेलवे के पश्चातवर्ती आचरण और इस तथ्य को ध्यान में रखा गया है कि बहुत बाद तक माल के परिदान से इनकार नहीं किया गया था। इसलिए यह माना गया कि वाद अंतिम इनकार के एक साल के भीतर लाया गया था , यह समय के भीतर था।सम्मान के साथ, यह समझना काफी मुश्किल है कि रेलवे और प्रेषक या प्रेषित के बीच पश्चातवर्ती पत्राचार से परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु पर कोई फर्क कैसे पड़ सकता है जबकि उस पत्राचार से केवल यह पता चलता है कि रेलवे माल का पता

लगाने की कोशिश कर रहा था। माल का पता लगाने में लगने वाली अवधि की प्रेषण के स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन के लिए

युक्तियुक्त समय निर्धारित करने में कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है।

बंगाल और उत्तर पश्चिमी रेलवे कंपनी बनाम महाराजाधिराज रामेश्वर सिंह बहादुर (1933 आई. एल. आर. 12 पैट 67, 77) में यह अभिनिर्धारित किया कि "प्रतिवादीगण (अर्थात रेलवे) ने वादी के अपने दावे पर ध्यान देने के लिए बार-बार अनुरोध को नजरअंदाज करने की एक जानबूझकर प्रक्रिया द्वारा उसे अपने वाद में देरी करने के लिए गुमराह किया और अब वे यह तर्क नहीं दे सकते कि वाद बहुत विलम्ब से लाया गया है। " यह मामला विबंध पर आधारित लगता है। लेकिन यहाँ फिर से हमें यह समझना मुश्किल लगता है कि अनुच्छेद 31 के अंतर्गत परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु कैसे बदला जा सकता था क्योंकि रेलवे ने वादी के दावे पर ध्यान देने के अनुरोध को नजरअंदाज कर दिया था।

जय नारायण बनाम भारत के गवर्नर-जनरल (ए. आई. आर. 1951 कैल. 462) में यह अभिनिर्धारित किया कि "वह समय जब माल परिदत्त किया जाना चाहिए ' अनुच्छेद 31 के अर्थ में यह वह समय नहीं है जब उन्हें सामान्य अनुक्रम में परिदत्त किया जाना चाहिए था, कम से कम ऐसे मामले में जहां परिदान के लिए कोई समय निर्धारित नहीं है, लेकिन वह समय है जबकि उन्हें रेलवे के पश्चातवर्ती वचनों के अनुसार परिदत्त किया जाना चाहिए था जो पक्षकारों को सूचित करता है कि वह जांच कर रहा है।" सम्मान के साथ, हमें यह पता लगाना मुश्किल लगता है कि

अनुच्छेद 31 के तीसरे स्तंभ के स्पष्ट शब्दों के आधार पर रेलवे के पश्चातवर्ती आचरण जिसने प्रेषक या प्रेषिति को सूचित किया कि यह माल का पता लगाने के लिए जांच कर रहा है,के कारण परिसीमा के प्रारंभिक बिंदु को कैसे बदला जा सकता है।

अंत में, गवर्नर-जनरल इन काउंसिल बनाम एस. जी. अहमद (ए. आई. आर. 1952 नाग. 77) में यह अभिनिर्धारित किया गया कि "अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि कुछ समय के लिए रेलवे प्राधिकारी स्वयं शेष पैकेजों को परिदत्त करने की उम्मीद कर रहे थे और पूरे मार्ग पर पूछताछ कर रहे थे..... ऐसे मामलों में यह उम्मीद करना उचित नहीं है कि वादी जांच के परिणाम की प्रतीक्षा किए बिना न्यायालय में वाद के लिए जल्दबाजी करेगा। इसलिए परिसीमा केवल तभी प्रारंभ होती है जब रेलवे प्राधिकारियों का कोई निश्चित कथन हो कि वे माल का परिदान करने की स्थिति में नहीं थे। " सम्मान के साथ, इस संबंध में, यह मामला तीसरे स्तंभ में ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु माल के परिदान के लिए रेलवे के अंतिम इनकार से है, जबकि वास्तविक शब्द कहते हैं कि परिसीमा उस समय से प्रारंभ होती है जब माल का परिदान किया जाना चाहिए, यानी अनुबंध में समय तय करने की किसी शर्त के अभाव में प्रेषण स्थान से गंतव्य स्थान तक परिवहन के लिए

युक्तियुक्त समय की समाप्ति।

हालाँकि अपीलार्थी से यह आग्रह किया गया था कि यद्यपि तीसरे स्तंभ के शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह है कि समय तब से प्रारंभ होता है जब माल के प्रेषण के स्थान से गंतव्य स्थान तक ले जाने के लिए युक्तियुक्त अवधि समाप्त हो जाती है, रेलवे और प्रेषक या प्रेषिती के बीच होने वाले पत्राचार से पता लगने वाले रेलवे के पश्चातवर्ती आचरण का इस युक्तियुक्त समय पर प्रभाव पड़ सकता है। अब अगर पत्राचार केवल माल का पता लगाने के बारे में है तो यह इस प्रश्न का विचार करने में तात्विक नहीं होगा कि माल का परिदान कब होना चाहिए था। दूसरी ओर, यदि पत्राचार ऐसी सामग्री का खुलासा करता है जो प्रेषण के स्थान से गंतव्य स्थान तक माल के परिवहन के लिए युक्तियुक्त समय निर्धारित करने के प्रश्न पर प्रकाश डाल सकती है, तो न्यायालय पत्राचार को ध्यान में रख सकता है। इसके अलावा, यदि पत्राचार में ऐसा कुछ भी है जिसका युक्तियुक्त समय के प्रश्न पर प्रभाव पड़ता है और रेलवे उस पर वापस जाना चाहता है, तो उस हद तक रेलवे को इससे इनकार करने से रोक जा सकता है। लेकिन पत्राचार को केवल यह निर्धारित करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि युक्तियुक्त समय क्या होगा और यह दिखाने के लिए नहीं कि रेलवे के पश्चातवर्ती आचरण के कारण रेलवे द्वारा माल का पता लगाने में लगने वाले समय से युक्तियुक्त समय बढ़ गया । हालाँकि, जहाँ पत्राचार ऐसी सामग्री प्रदान करता है जिससे किसी विशेष मामले में युक्तियुक्त समय का पता लगाया जा सकता है, पत्राचार उस विस्तार तक प्रासंगिक

होगा। उदाहरण के लिए, एक ऐसे मामले को लें जहां पत्राचार से पता चलता है कि प्रेषण के स्थान और गंतव्य के स्थान के बीच एक निश्चित पुल बाढ़ के कारण नष्ट हो गया और यही कारण है कि माल गंतव्य स्थान तक नहीं पहुंचा। ऐसे मामले में ऐसी परिस्थितियों में माल के परिवहन के लिए युक्तियुक्त समय का पता लगाने के लिए पत्राचार को ध्यान में रखा जा सकता है। इससे पता चलता है कि युक्तियुक्त समय प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और किन्ही विशेष परिस्थितियों के अभाव में व्यावहारिक रूप से दो स्टेशनों के बीच युक्तियुक्त समय वही होगा जो सामान्य रूप से या आमतौर पर या साधारण रूप से एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक माल के परिवहन में लगता है। इसके अलावा, युक्तियुक्त समय का पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है जहां बड़ी मात्रा में माल परिदत्त किया जा चुका है और केवल एक हिस्सा परिदत्त नहीं किया गया है, ऐसे मामले में विशेष परिस्थितियों के अभाव में यह देखना आसान होना चाहिए कि युक्तियुक्त समय वह है जिसमे अधिकांश माल का परिदान किया गया है। इस संबंध में हम भारत संघ बनाम मेघराज अग्रवाल (ए.आई.आर. 1958 कैल. 434) और गजानंद राजगोरिया बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1955 पैट. 182) का संदर्भ ले सकते है जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां खेप का एक हिस्सा परिदत्त किया जा चुका है, जांच के संबंध में पत्राचार के बावजूद और विपरीत दृष्टिकोण वाली परिस्थितियों के अभाव में, अनुच्छेद 31 में उन शब्दों के अर्थ में उसे उस दिनांक को लिया

जाना चाहिए जब माल का पूर्ण रूप से परिदान किया जाना चाहिए। इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा अमीनचंद भोलानाथ के मामले में अनुच्छेद 31 के स्तंभ तीन के शब्दों की व्याख्या के बारे में लिया गया दृष्टिकोण हमारी राय में सही है।

इसलिए आइए देखें कि वर्तमान मामले में युक्तियुक्त समय क्या था जिसमे माल गुजरांवाला से जगाधरी पहुंचना चाहिए था। अपीलार्थी ने स्वयं अपनी प्रतिकृति में कहा कि माल सामान्य अनुक्रम में 15 अगस्त, 1947 से पहले जगाधरी तक पहुंच जाना चाहिए था। उसने आगे 22 जनवरी, 1948 को दिए गए नोटिस में कहा कि वाद हेतुक 21 और 30 अगस्त, 1947 और बाद की दिनांकों को उत्पन्न हुआ, जब उसे माल का परिदान करने से इनकार कर दिया गया।यह तथ्य कि अपीलार्थी ने जनवरी 1948 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अंतर्गत नोटिस दिया हमारी राय में यह दर्शाता है कि अगस्त 1947 में भारत के विभाजन के कारण प्रचलित असामान्य स्थितियों को भी ध्यान में रखते हुए ; अपीलार्थी संतुष्ट था कि माल 22 जनवरी, 1948 से पहले परिदत्त किया जाना चाहिए था जब उसने नोटिस दिया था। यदि ऐसा नहीं था और वाद हेतुक उत्पन्न नहीं हुआ था, तो अपीलार्थी को जनवरी 1948 में धारा 80 के अंतर्गत नोटिस देने का कोई कारण नहीं था। इसलिए हम इस मामले के तथ्यों में उच्च न्यायालय से सहमत है कि विभाजन के कारण प्रचलित असाधारण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भी माल को भेजे जाने की

तारीख अर्थात् 5 अगस्त, 1947, से पाँच या छह महीने के भीतर, परिदत्त कर दिया जाना चाहिए था।यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी ने 22 जनवरी, 1948 को नोटिस दिया था, अर्थात माल भेजे जाने के लगभग 5-1/2 महीने बाद। इन परिस्थितियों में दिसंबर 1949 में लाया गया वाद स्पष्ट रूप से समय द्वारा वर्जित होगा, क्योंकि हम उस युक्तियुक्त समय को नहीं ले सकते हैं जिसके भीतर इस मामले की परिस्थितियों में 22 जनवरी, 1948 के बाद माल परिदत्त किया जाना चाहिए था, जब धारा 80 के अंतर्गत नोटिस दिया गया था। पक्षकारों के बीच पत्राचार के बारे में यह कहना पर्याप्त है कि पत्राचार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका गुजरांवाला से जगाधारी तक माल के परिवहन के लिए लिए गए युक्तियुक्त समय पर कोई प्रभाव पड़े। यह सच है कि 1 दिसंबर, 1948 को अपीलार्थी को रेलवे द्वारा सूचित किया गया था कि पाकिस्तान सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के कारण माल अभी भी गुजरांवाला में पड़ा हुआ था। और उसे उस सरकार से आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के लिए कहा गया था; लेकिन हमारी राय में गुजरांवाला से जगाधरी तक माल के परिवहन में लगने वाले युक्तियुक्त समय के प्रश्न से कोई मतलब नहीं है। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि वाद अनुच्छेद 31 के अंतर्गत परिसीमा द्वारा वर्जित था।

हालाँकि अपीलार्थी के विद्वान वकील ने हमारा ध्यान विस्थापित व्यक्ति (वाद संस्थित) अधिनियम(1948 का सं. XLVII) जिसे विस्थापित

व्यक्ति (वाद और विधिक कार्यवाही संस्थित) अधिनियम (1950 का सं. LXVIII)द्वारा संशोधित किया गया है की ओर आकर्षित किया और तर्क दिया कि अपीलार्थी एक विस्थापित व्यक्ति होने के नाते इस अधिनियम जो कि 31 मार्च, 1952 तक संशोधित है , की धारा 8 के अंतर्गत यह वाद दायर करने का हकदार होगा। यह प्रतीत होता है कि वादपत्र के पैरा 9 में अपीलार्थी ने दिल्ली के न्यायालय को अधिकार क्षेत्र देने के लिए अपने विस्थापित व्यक्ति होने को आधार बनाया, जहां उसने वाद दायर किया था। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि उसने परिसीमा के प्रश्न पर अपने को विस्थापित व्यक्ति होने का आधार बनाया है। प्रत्यर्थी ने लिखित कथन में इस बात से इनकार किया कि अपीलार्थी एक विस्थापित व्यक्ति था और मामले के इस पहलू के संबंध में आगे कुछ नहीं हुआ। अपीलार्थी के विद्वान वकील का आग्रह है कि वास्तव में अपीलार्थी एक विस्थापित व्यक्ति है और 1950 के अधिनियम द्वारा संशोधित 1948 के अधिनियम के लाभ का हकदार होगा और उस आधार पर उसका वाद समय के भीतर होगा और अपीलार्थी को 1948 के संशोधित अधिनियम के अंतर्गत अपने मामले को लाने की अनुमति देने के लिए वाद वापस भेजा जा सकता है। सामान्य तौर पर हम इस तरह की प्रार्थना की अनुमति नहीं देते जब वादपत्र में मुद्दा नहीं उठाया गया था; लेकिन यह देखते हुए कि अपीलार्थी एक विस्थापित व्यक्ति होने का दावा करता है जो दिल्ली में पंजीकृत है और यह भी मानते हुए कि संभवतः भारत के विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों के

कारण उसे इस वाद को फॉर्मा पॉपरिस में दायर करना पड़ा, हम सोचते हैं कि अपीलार्थी को 1950 के अधिनियम द्वारा संशोधित 1948 के अधिनियम के अंतर्गत अपना मामला साबित करने का मौका दिया जाना चाहिए। हम इस सवाल पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं कि क्या अपीलार्थी एक विस्थापित व्यक्ति है या क्या वह 1950 के अधिनियम द्वारा संशोधित 1948 के अधिनियम के लाभ का हकदार है। लेकिन हम न्याय के हित में सोचते हैं कि उसे अपने मामले को परिसीमा के मामले में 1950 के अधिनियम द्वारा संशोधित 1948 के अधिनियम, के अंतर्गत लाने का मौका दिया जाना चाहिए यदि वह वाद के परिणाम की परवाह किए बिना प्रत्यर्थी द्वारा अब तक की गई सभी लागतों का भुगतान कर दे ।

इसलिए हम अपील स्वीकार करते हैं और यदि आवश्यक हो तो इस संबंध में पक्षकारों को साक्ष्य का नेतृत्व करने का अवसर देने के पश्चात वाद को विस्थापित व्यक्ति (वाद संस्थित) अधिनियम(1948 का सं. XLVII) जिसे विस्थापित व्यक्ति (वाद और विधिक कार्यवाही संस्थित) अधिनियम (1950 का सं. LXVIII)द्वारा संशोधित किया गया है के आधार पर केवल परिसीमा के प्रश्न पर विचार करने के लिए विचारण न्यायालय को भेजते है। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि

वाद इन दो अधिनियमों के आधार पर समय के भीतर है, तो प्रत्यर्थी द्वारा इस तिथि तक की गई लागत को घटाकर दावा की गई राशि के लिए एक डिक्री अपीलार्थी के पक्ष में पारित की जाएगी। यदि दूसरी ओर

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वाद इन दोनों अधिनियमों के अंतर्गत भी परिसीमा के भीतर नहीं है, तो वाद अंततः खारिज कर दिया जाएगा। इसके बाद की गई लागत न्यायालय के विवेकाधिकार पर होगी। अपील मंजूर की गई।

नोटः- यह अनुवाद और्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक **भावना(न्यायिक अधिकारी)** द्वारा किया गया है

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।